आत्महत्या की फसल

हमारे देश में पिछले वर्षों में छात्र-छात्राओं द्वारा आत्महत्या करने के आंकड़ों में चौंकाने वाली वृद्धि हुई है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरों के आंकड़ों के हवाले से एक समाचार वेबसाइट की रिपोर्ट बताती है कि 2015 के आंकड़ों के हिसाब से भारत में हर घंटे में एक छात्र-छात्रा द्वारा आत्महत्या की जा रही है।[1] प्रति घंटे की दर से दिया गया यह आंकड़ा एक ऐसी छवि निर्मित करता है जैसे हम इस दर से आत्महत्याओं का उत्पादन कर रहे हैं। यही रिपोर्ट आगे बताती है कि लैंसेट की 2012 की रिपोर्ट के हिसाब से 15 से 29 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं द्वारा की जाने वाली आत्महत्या की सबसे ऊंची दर भारत में है। लगता है हमारे समाज का खेत आत्महत्या की फसल से लहलहा उठा है। हमने अपने युवाओं को तनाव की भट्टी में झोंक दिया है। यह एक चेतावनी है जिसे अब और अनसुना किया जाना घातक होगा। हम समझने की कोशिश करते हैं कि इसकी जड़ें कहां-कहां हैं?

कैरियर की गलत धारणा

हमने कैरियर यानी सुनिश्चित भविष्य की बहुत सीमित धारणा पिछले तीन दशकों में (नब्बे के दशक की शुरुआत से जब से हमने उदारवादी नीतियों का दामन थामा है) गढ़ी है। इस धारणा में मेडिकल, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट, सीए जैसे कुछ क्षेत्रों को ही सुनिश्चित भविष्य की श्रेणी में माना लिया गया है। हमारी यूनिवर्सिटी और कॉलेजों में सामाज विज्ञान, साहित्य, दर्शन जैसे विभाग खाली पड़े हैं या बंद हो चुके हैं। इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर विश्वविद्यालयों या स्कूलों में बतौर शिक्षक, शोधार्थी हो सकते हैं अथवा बतौर समीक्षक, लेखक, पत्रकार, चिंतक हो सकते हैं किन्तु हम देख सकते हैं कि आज के युवाओं में से कोई भी शिक्षक बनने की चाह नहीं रखता ना ही उनकी सामाजिक शोध, चिंतन के क्षेत्र में जाने में रुचि है। इसकी सीधी वजह है कि इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बेहद कम हो चुके हैं। लेकिन एक समाज के तौर पर हमें सामाजिक शोधों, नए साहित्य व दर्शन के नए विचारों की जरूरत तो हमेशा रहने वाली है। चूंकि हमने रोजगार सृजन को पूरी तरह बाजार के हवाले कर दिया है ऐसे में इन जरूरी किन्तु गैर लाभकारी क्षेत्रों में निजी क्षेत्र पूंजी निवेश क्यों करने लगा। इन विषयों की इसके बाद एक जो उपयोगिता बची रह जाती है वह है सिविल सेवाओं के इम्तिहानों के लिए विषय के तौर पर इनका चुनाव किया जाना। ऐसे में उद्देश्य गहराई से इनका अध्ययन करना व शोध में आगे बढ़ना नहीं रह जाता बल्कि किसी कोचिंगे सेंटर के नोट्स का रट्टा लगाना और ज्यादा से ज्यादा अंक लाकर मेरिट में अपना स्थान सुनिश्चित करना भर रह जाता है।

हमने हुनर या कौशलों को तो शिक्षा से स्वतंत्रता की अलस भोर में ही अलग कर दिया था। महात्मा गांधी ने काम व श्रम को शिक्षा में स्थान देने के लिए बुनियादी शिक्षा का पौधा रोपा था। लेकिन हमारे जातिवादी मन को वह प्रयास रास नहीं आया क्योंकि हमारे नीति निर्माता व शासक वर्ग में बड़ा तबका ऊंची जातियों से रहा है और उसे अपने बच्चों का हाथ से काम करना रास नहीं आता। फिर काम व श्रम को महत्व देने का आशय जातीय पायदान में अपेक्षाकृत निचले स्तर पर मौजूद उन जातियों के ज्ञान की वैधता को भी तो स्वीकारना हुआ जिन्हें हम आज तक शूद्र और गंवार कहने के आदि रहते आए हैं। एक समाज के तौर

अपनी सोच में इस विभाजित मानिसिकता की ही परिणति हम आज स्कूली स्तर पर कौशल विकास के लिए अलग कोर्सों की वकालत करने के संदर्भ में देख सकते हैं जहां कौशलों को शिक्षा का हिस्सा नहीं मान कर उन्हें दोयम दर्जे पर रखते हुए निजी क्षेत्र के लिए 'स्किल्ड लेबर' उत्पादित करने के एक उपकरण के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते हैं। इसे हम शिक्षा की पुनरुत्पादक की भूमिका के संदर्भ में देख सकते हैं कि कैसे ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित हमारे नीति निर्माताओं ने जाति को दूसरे रास्ते से बरकरार रखने का जुगाड़ कर लिया है क्योंकि इन कौशल विकास कार्यक्रमों में ज्यातार किशोर-किशोरी उन्हीं जातियों से आने वाले हैं जो पहले से श्रम व हाथ के कामों से जुड़ी थीं और आर्थिक पायदान में निचले क्रम पर मौजूद हैं। इसका सीधा अर्थ है कि इनके लिए उच्च शिक्षा के रास्ते इतने आसान नहीं रह जाने वाले हैं क्योंकि और इनके अंकों को आगे यूनिवर्सिटी या कॉलेज में दाखिले के लिए किए जाने वाले आवेदन के वक्त गिना नहीं जाएगा। एक बड़ी वजह इसकी यह भी है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था उन जातियों के जीवन में सामाजिक गतिशीलता की भूमिका निभाने में अभी तक नाकाम रही है और इसलिए वे अभी भी आर्थिक वर्गों में सबसे निचले पायदान पर मौजूद हैं। भारत में जातियों व आर्थिक वर्ग के बीच का संबंध जग जाहिर व सामाजिक अध्ययनों से पुष्ट हो चुका है। यहां दी गई सारणी भी इसकी पुष्टि करती है :

सारणी 1 : विभिन्न आयु वर्गों में जाति-वार दाखिलों का प्रतिशत (एनएसएस 68 वां चक्र, 2011-12)

आयु वर्ग	अजजा	अजा	ओबीसी	सामान्य	कुल
6–14 वर्ष आयु वर्ग में स्कूल में दाखिले	91.2	91.9	92.7	94.8	92.9
15–17 वर्ष आयु वर्ग में स्कूल में दाखिले	67.9	67.4	74.9	80.1	74.2
18–21 वर्ष आयु वर्ग में उच्च शिक्षा में दाखिले	14.2	18.8	25.2	36.6	26.2

''यहां इस बात का पता नहीं चलता कि किस समूह के कितने विद्यार्थी अच्छे या बुरे स्कूलों और कॉलेजों में जा रहे हैं। बहुत सारे लोगों के अनुमान यही संकेत देते हैं कि यह संतुलन भी सामान्य जातियों के पक्ष में ही है। सबसे बढ़िया स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ने तथा विदेश जाने वाले विद्यार्थियों में सबसे ज्यादा संख्या सामान्य जातियों के विद्यार्थियों की ही होती है।''[2] (पृष्ठ 13, जातिवाद और शिक्षा, अमन मदान, शिक्षा विमर्श, मई-जून, 2016)

मनचाही जगह एडमिशन न मिलना

हम अपने पास-पड़ौसे के मध्यम व निम्न-मध्यम वर्ग में 15-17 साल के किशोरों की दिनचर्या देखें तो अनुभवों से यह महसूस कर सकते हैं कि हम किस पसोपेश से गुजर रहे हैं। इस उम्र में उनका ज्यादातर समय ट्यूशन की भागदौड़ में जा रहा होता है। वे किताबों में सिर खपाये बैठे होते हैं। होली और बसंत के मौसम के समय परीक्षा की तैयारी में रातें काली कर रहे होते हैं। अपने लिए बेहतर से बेहतर अंक जुगाड़ने की कोशिश में लगे होते हैं। उनके जीवने को देखो तो उम्र के 'स्वीट सिक्सटीन' पड़ाव से स्वीट कब का गायब हो चुका होता है खुद उन्हें नहीं पता होता है। इस सबके बावजूद जब 97-98 प्रतिशत अंक आने के बाद भी किसी बढ़िया कही जाने वाली मनचाही यूनिवर्सिटी या कॉलेज में दाखिला नहीं मिलता और मिल भी जाए तो मनचाहे विषयों के चुनाव के साथ नहीं मिलता तब लगता है कि अर्जित यह सफलता कितनी विफलता के बोध से भरी है।

जब हम कैरियर के दायरे को इतना सीमित कर देते हैं तो महत्वाकांक्षाओं का दायरा भी उसके दबाव में सिकुड़ जाता है। अब हर दूसरे युवा की महत्वाकांक्षा उस छोटे से दायरे में ही अपनी जगह बनाने की रहती है। और चूंकि हमने अपनी नीतियों के चलते शिक्षा को बाजार के हवाले कर दिया है और बाजार अपनी शर्तों पर चलता है। वह कभी भी इस छोटे से दायरे में पूर्ति को मांगे के नजदीक भी नहीं फटकने देता क्योंकि इसी से उसका अस्तित्व बचा रहता

है। यहां सदा ऊंची मांग बनी रहेगी चाहे वह युवाओं की जान की कीमत पर ही क्यों न टिकी हो। इसलिए इन क्षेत्रों में अच्छे कहे जाने वाले शैक्षिक संस्थानों की कमी सदा बनी रहेगी।

कर्ज में डूब कर करियर की नैया पर सवार हो जाना

हमने नब्बे के दशक में उदारीकरण की नीतियों को अपनाना शुरू किया था। तब से अब तक हम इस रास्ते पर बहुत आगे बढ़ चुके हैं और उस जगह पहुंच चुके हैं जहां अब शिक्षा व स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों को शैक्षिक कर्ज व स्वास्थ्य बीमा के भरोसे छोड़ दिया है। कर्ज लेकर पढ़ाई करना आज के युवा की मजबूरी बनती जा रही है क्योंकि सरकार ने उच्च शिक्षा से हाथ लगभग खींच लिया है। उसे 12वीं तक आते-आते अपना तथाकथित कैरियर बनाने व आगे की पढ़ाई के लिए किसी न किसी तरह का कर्ज लेने के लिए मजबूर होना ही पड़ता है क्योंकि शिक्षा के तेजी से बढ़ते निजीकरण के चलते आगे की फीस इतनी अधिक है कि माता-पिता अपनी तनख्वाह या आय से उसकी भरपाई नहीं कर सकते हैं। यह कर्ज अनचाहे ही उस उम्र में युवाओं के कंधे पर अपनी जकड़ बढ़ा देता है जिस उम्र में उन्हें अपनी खुद की पहचान करनी चाहिए थी, खुद को खोजना चाहिए था, अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर अपने कैरियर को चुनने का अवकाश चाहिए था। यह सब खोजने, जानने में साहित्य, सिनेमा, कला, और अंकुआता प्रेम आपको मदद करता है। मगर अफसोस कि हमने अपने युवाओं से वह वक्त छीन लिया है।

और यह तो वह मंजिल नहीं

कैरियर की भागादौड़ी में निकला समय वापस नहीं आता। युवा जब कैरियर में 'सैटल' हाने की ओर बढ़ रहे होते हैं तब उनमें से बहुतों को यह महसूस होने लगता है कि यह तो वह कैरियर नहीं है जिसके लिए वह बने हैं। लेकिन तब वे तक इतने कर्ज में डूब चुके होते हैं कि वापसी का कोई रास्ता नहीं बचा होता है और ऐसे में उन्हें जीवन से ज्यादा सुलभ मृत्यु लगने लगती है। हताशा और उससे पैदा हुआ असफलता का बोध इतना गहरा हो जाता है कि उसके सामने मुत्यु एक आसान मंजिल लगने लगती है। ◆

संदर्भ

1. https://www.hindustantimes.com/health-and-fitness/every-hour-one-student-commits-suicide-in-india/story-7UFFhSs6h1HNgrNO60FZ2O.html

2. http://www.digantar.org/uploads/shiksha-vimarsh/articles/2016_05_03.pdf